ISSN: 2349-7637 (Online)
Volume-1, Issue-2, September 2014
RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal
Research Paper

# हिंदी कविता में दलित चेतना और प्रतिरोध का स्वर

Dr. Rekha Mishra

Lecturer Hindi, Government College, Bibirani (Alwar), Rajasthan

***Abstract:*** *प्रतिरोध हमेशा से स्वतंत्रचेता होने की पहचान है, जो स्वतंत्र हैं या जिन्हें स्वतंत्र होने के मायने पता है और जो उसके लिए संघर्षरत हैं, वही व्यक्ति या समाज प्रतिरोध कर सकता है। प्रतिरोध जब सकारात्मक जीवन धर्मी मूल्यों के पक्ष में होता है तभी प्रासंगिक होता है। जो साहित्य समाज को प्रतिबिंबित करता है वही साहित्यकार एवं साहित्य पाठक के अंतःकरण की चेतना से संबंध होता है। वही साहित्य पाठक के बौद्धिक सांस्कृतिक और मानसिक चेतना का विवेचन करता है। और यदि साहित्य ऐसा करने में असमर्थ रहता है तो वह प्रासंगिक हो जाता है।*

***Key words:*** *साहित्य, दलित, कविता, हिंदी*

शोध विस्तार: साहित्य में प्रतिरोध के अर्थ बहु स्तरीय होते हैं। प्रतिरोध की संस्कृति पर बात करते हुए बद्रीनारायण कहते हैं " प्रतिरोध की संस्कृति होती है ,प्रतिरोध की संस्कृति बोलती भी है और चुप भी रहती है। प्रतिरोध की बोलती संस्कृति के अनेक रूप होते हैं तो चुप संस्कृति के भी सहस्र रूप हैं। " इस प्रकार उनके अनुसार प्रतिरोध बहु आयामी होता है- 'स्वयं से गैर से,सत्ता से, शक्ति एवं व्यवस्था से, विधि से।' हिंदी कविता का जन्म सकारात्मक जीवन मूल्यों की पक्षधरता को लेकर हुआ है।

हिंदी साहित्य में दलित कविता प्रतिरोध के स्वर का साहित्य है। यह स्थापित नैतिकता की परिभाषा पर प्रश्न चिन्ह खड़े करता है और वर्षों से चली आ रही रूढ परंपराओं और स्थापनाओं के विरोध में खड़ा हुआ है हिंदी की पत्रिका सरस्वती के सितंबर 1914 के अंक में हीराडोम की कविता 'अछूत की शिकायत 'का प्रकाशन हुआ था। यद्यपि हिंदी में उस समय दलित साहित्य जैसा कोई साहित्यिक आंदोलन नहीं था और ना ही उस समय उपनिवेशवाद और सामंतवाद के विरोध में परिवेश बना हुआ था। हीराडोम की यह कविता उस समय की वर्ण व्यवस्था पर बहुत सारे प्रश्न उठाती है और कविता को प्रतिरोध का स्वर प्रदान करती है-

हमनी के दुख भगवनओ न देखता जे
हमनी के कबले कलेसवा उठाइब।

उनके अनुसार सवर्णों के ईश्वर अलग होते हैं और उन्हें शायद अछूत होने के कारण उन ईश्वर को छूने से डर लगता है -

कहवा सुतल बाटे सुनत न बारे अब
डोम जानि हमनी के छुए डेरइले।

हीरा डोम की यह कविता उस समय के प्रतिरोध को उजागर करती है। इसी प्रकार प्रतिरोध के स्वर देवेंद्र कुमार की कविताओं में भी मुखरित हुए हैं ।उनकी कविताओं में दलितों के ऊपर सदियों से होते आए शोषण के विरोध में उनका प्रतिरोध उभर कर आया है। उनकी कविता' कोठे का बांस' संघर्षरत व्यक्तियों में नई चेतना और जागृति को पैदा करने वाली है।

किनारे की कोठ का बांस झुक आया था
नीचे जमीन तक
गोया कह रहा हो
मुझे देखो मुझमें
कितनी लाठियां निकल सकती हैं।

यह कविता समाज में फैली हुई असमानताओं के बावजूद तथा समाज के सबसे पीछे के व्यक्ति के बार-बार उठकर खड़े होने और उसकी जीवटता को बयां करती है। उन्होंने उसी की तुलना बांस के काटे जाने के बाद बार-बार उसमें से कोंपल के फूट जाने से की है।


*2014, RHIMRJ, All Rights Reserved*

मैं खत्म होने को नहीं
कटने के बाद अगली बरसात में
फिर कोंपल फूटेगी
नए-नए बांस होंगे
मुझसे भी ऊंचे, मजबूत और सलीके के
आने वाले सूरज का स्वागत करने के लिए
मेरी पैदाइश ही है जुर्म के विरोध में।

उन्होंने दलित समाज में व्याप्त भूख, अशिक्षा गरीबी बेरोजगारी और अन्य समस्याओं पर अब प्रकाश डाला है। इन कविताओं से स्पष्ट होता है कि ये सब कारण दलित समाज की प्रगति में बाधक बने हुए हैं। उन्होंने इस बात को भी इंगित किया है कि भूख से अधिक जातिगत उपेक्षा,अपमान और शोषण उन्हें आहत करते हैं। जयप्रकाश कर्दम के अनुसार

कितना विकट होता है
भूख के गणित से
जाति का व्याकरण।

मानवीय सद्भाव और समानता के व्यवहार से इन विषमताओं को दूर भी किया गया है और इन विषमताओं का निराकरण करने की सोच और प्रयास सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर समानता के रूप में दिखाई दे रहे हैं। इन कविताओं में वर्ण भेद करने वाली व्यवस्था के खिलाफ स्वर सुनाई देते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था पर बहुत सारे प्रश्न खड़े करती हैं। डॉ.सी. के. भारती की 'आदमी"कविता से उदाहरण लिया जा सकता है। यहां वे प्रतिरोध के लिए तैयार करते हुए नजर आते हैं-

आओ हम सब उठा लें कुदाली,
फावड़े और कलम
और दफना दे गहरे
इस जातिवादी, वर्णवादी व्यवस्था को
जिससे फिर से जन्म ले सके आदमी
केवल आदमी
मुकम्मल आदमी।

सामाजिक परिवेश में व्याप्त असमानता का कारण इन कवियों ने राजनीति और अर्थ को माना है। दलित साहित्य दलितों के सर्वांगीण विकास के स्वप्न को लेकर के उनके उत्थान की बात करता है और उनका मानना है कि आर्थिक समानता और राजनीतिक भागीदारी से ही इस जातिगत असमानता को दूर किया जा सकता है। कवि इस सोच से ही समाज की आंतरिक पड़ताल करते हैं। इन कविताओं में परिस्थितियों के दबाव से टूटा हुआ नायक है।
दलित समाज में अब धीरे-धीरे कुछ व्यक्ति 'नए वर्ग' के रूप में उभर कर आ रहे हैं। इन्हीं पर पारसनाथ की कविता 'घायल परिंदों के मन' में अपने समाज में पैदा हुए नए वर्ग का प्रतिरोध करती हुई नजर आती है।

दलितों के बेटे
सदियों की जमा पूंजी थामने को आतुर
क्योंकि
आज के दलित राजनीतिज्ञ
करने लगे हैं
मंदिरों की दरबानी
अब
घायल परिंदों के मन


*2014, RHIMRJ, All Rights Reserved*
*ISSN:* 2349-7637 (Online)

मुश्किलों में घिरे हैं।
सुबके हैं टूटे हैं
अपने ही दलित राजनीतकियों पर थूके हैं।

इन कविताओं में उनकी अपनी भोगी हुई पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। इन कविताओं के माध्यम से उन्होंने अपने दुखों को बाहर निकाला है। इन कविताओं का उद्देश्य मनोरंजन नहीं माना अपितु अपनी संवेदनाओं को उजागर करना और समाज की मानसिकता को बदलने का प्रयास माना है।

प्रतिरोध का एक स्वर लैंगिक प्रश्नों से भी जुड़ा हुआ है। दलित स्त्री को वर्तमान परिवेश में दोहरे संघर्षों का सामना करना पड़ता है। एक तो उसके स्त्री होने के कारण, दूसरे उसके दलित स्त्री होने के कारण वह दोहरे संघर्षों का सामना करती हैं।उसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था से भी संघर्ष करना होता है। यह संघर्ष दलित स्त्री द्वारा रचित साहित्य में परंपराओं और रूढ़ियों के प्रति प्रतिरोध के रूप में उभर कर आया है। इन कविताओं में इन स्त्रियों ने अपनी भोगी हुई पीड़ा के भावचित्र रचे हैं। वह काम करने के लिए घर से बाहर निकलती है, आर्थिक रूप से सशक्त भी है, लेकिन इसके बावजूद भी दलित स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्त नहीं है। स्वरूप रानी की कविता का अंश है-

अरे हां....अपनी जिंदगी को मैंने दिया कब?
घर में पुरुषाहंकार एक गाल पर थप्पड़
मारता है तो
गली में वर्ण आधिपत्य दूसरे गाल पर चोट करता है।

इस कविता में उन्होंने समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक शोषण पर अपना प्रतिरोधात्मक स्वर उठाया है। दलित महिलाओं के उत्थान में लगी राजस्थान की कुसुम मेघवाल लिखती हैं कि कोई हमारा मसीहा बनकर आने वाला है। उन्हें स्वयं अपने उत्थान के लिए आगे आना होगा और अपने अंदर विश्वास पैदा करना होगा। जब तक अपनी स्वयं की सहायता नहीं करने लगेंगे तब तक इन सारी विषमताओं को पार नहीं कर पाएंगे। उन्होंने समाज की महिलाओं को भाग्य और भगवान के भरोसे नहीं रहने की बात अपनी कविताओं के माध्यम से कही है। क्योंकि पुरुष स्त्री संदर्भ में मालिक होने का अपना दम्भ रखते हैं और उसी तरह का व्यवहार करते हैं। रजनी अनुरानी की कविता ' ताले और चाबियां' से इन इसे रेखांकित किया गया है।

पुरुष ने बनाए बहुत से ताले
औरत के लिए
और चाबियां छुपा दी
कितनी ही सदियां गुजर गई हैं
औरत को चाबियां खोजते
और पुरुष को उस पर हंसते।

निष्कर्ष: ये कविताएं उस स्त्री के बदले आत्मविश्वास को दिखाती हैं। वह प्रश्न करने लगी है यह जानते हुए भी कि इनह प्रश्नों के उत्तर उसको स्वयं ही ढूंढने होंगे। फिर भी वह इन कविताओं के माध्यम से अन्याय और अत्याचार के विरोध में संघर्षरत है। वैश्वीकरण और उदारवाद के इस समय में बहुत अंतर जातिय विवाह होने लगे हैं किंतु इन वैवाहिक रिश्तों में सांस्कृतिक और सामाजिक अवमानना अभी भी बनी हुई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इन कविताओं में चेतना का जागरण हुआ है। यह परिवर्तन शिक्षा, स्वाभिमान के प्रति संचेतना, पुरानी पीढ़ियों का इतिहास आदि के फल स्वरुप हुआ है। स्वयं दलितों के जीवन संघर्ष, सामाजिक सुधार आंदोलन तथा समाज सुधारकों और सरकारों के संयुक्त परिणाम का फल है कि आज यह समाज अपने पूर्वजों से अलग हटकर स्वाभिमान युक्त समाज में सम्मान से जीवन जी रहा है।

**संदर्भ ग्रंथ -**

1. शरण कुमार लिंबाले - दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र


*2014, RHIMRJ, All Rights Reserved*
*ISSN:* 2349-7637 (Online)

2. चंद्र कुमार बरठे- दलित साहित्य आंदोलन
3. डॉ नगेंद्र सिंह -दलितों के रूपांतरण की प्रक्रिया
4. विमल शंकर नागर- हिंदी के आंचलिक उपन्यास: सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ
5. यशवंत मनोहर- दलित साहित्य सिद्धांत और स्वरूप

RHIMRJ


*2014, RHIMRJ, All Rights Reserved*
*ISSN:* 2349-7637 (Online)